15

अमृत संदेश रायपुर 10-1-98

गैर - सरकारी स्वयंसेवी संगठनों को जरुरत है स्वमूल्यांकन की

आशीष कोठारी

आजकल अखबारों में आए दिन इस तरह की खबरें सुर्खियों में छप रही है जिनका आशय आमतौर से यही होता है कि सैकड़ो गैर सरकारी सगठनो मे धोखाधड़ी चल रही है वे अनुचित श्रम प्रथाए डाल रहे हैं, संरक्षण कार्यक्रमो के लिये बंटित पैसे का दुरुपयोग कर रहे हैं, राजनीतिक नेताओं के चक्कर मे पडते हैं तथा यह भी कि विदेशी कपनियो के माध्यम से उन्हे ढेर पैसा मिल रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि जिस तरह की टीका - टिप्पणी पहले केवल सरकारी क्षेत्र पर की जाती थी वह अब उसी गैर सरकारी क्षेत्र की तरफ मुड रही है जिससे उम्मीद की जाती थी कि वह सरकार का एक स्वस्थ्य और जीवंत विकल्प बनेगा। आइए देखें कि आखिर चूक कहां हुई है ?

साम्राज्य निर्माता (?)

दर असल अनेक गैर - सरकारी संगठन उसी बीमारी से पीडित है जिसकी चपेट मे सत्ताधारी हमेशा से आते रहे हैं यानी बडे से बडे इलाको तक अपने प्रभाव और सत्ता के विस्तार की चाह। इन लोगों को वे धनीमानी दानदाता इस बीमारी के वाहक प्रसारक बनने के लिये हमेशा तैयार मिलते है जो भ्रष्ट सरकारो तथा नये नायक और खलनायकों की तलाश में रहने वाले सनसनीखेज खबरों के भूखे प्रसार माध्यम तथा लालफीता शाही और सार्वजनिक सेवाओ के निकम्मेपन तथा उनके द्वारा उनके दानदाताओ के पैसे की बरबादी से अजीज आ चुके हैं। इन हालातों को गैर सरकारी संगठनो ने अपने लिये एक बढिया मौके की तरह देखा है। जब हम उनके करोडों के सालाना बजट दर्जनों ऐसे स्थाई कर्मचारी जो वेतन पांच अंको मे पाते हैं, कई मंजिले ऊंचे कार्यालयो तथा स्टाफ के लिये एक झटके मे आयोजित होने वाली विदेश यात्राए देखते हैं तो हमें बरबस यह सवाल पूछने की इच्छा होती है कि क्या ये सब अब भी गैर सरकारी स्वय सेवी कार्यकर्ता कहलाने के हकदार है ? स्वयं सेवी की वह भावना, जिसमें किसी खास उद्‌देश्य की तुलना मे दौलत और शोहरत मात्र संयोग माने जाते है, अब सिरे से गायब है। आखिर गांधीवादी नैतिकता तथा 'लघु ही सुंदर है{ के दर्शन के ये हिमायती इन सिद्धातो का पालन अपने स्वयं के क्रिया - कलापों मे क्यों नहीं करते ?

गैर - सरकारी स्वैच्छिक सगठनो को सरकारों और बडे - बडे निगमों की ज्यादतियों के विरुद्ध पैनी नजर रखते हुए ही विकास तथा सामाजिक न्याय के वैकल्पिक रास्ते सुझाने की महत्वपूर्ण भूमिका निबाहनी है। इतना ही नही समाज के वंचित और कमजोर वर्ग को अनिवार्य सामाजिक सेवाए प्रदान कर उनकी स्वयं की गतिशील करने की प्रक्रिया को भी आसान बनाए की जिम्मेदारी उन्हीं की है। लेकिन विगत कुछ वर्षों के दौरान हमने ऐसे स्वैच्छिक संगठन भी उभरते हुए देखे हैं जो उक्त भूमिका निबाह रहे होने की बाते तो करते हैं लेकिन वे उसी शोषक - प्रणाली को ताकतवर बना रहे है जिसके खिलाफ लड रहे है होने का वे दावा करते हैं। यहां नीचे हम ऐसे ही बिगो पढे और संस्थागत रुप धारण किये गैर सरकारी सगठनों की कुछ खासियते पेश कर रहे हैं।

★ संगठन जितना विशाल होता हैं, और ज्यादा बडा बनने की उसकी चाह भी उतना ही तीव्र होती है, वह वैकल्पिक प्रौद्योगिकी, पर्यावरण शिक्षा, सामाजिक न्याय, प्रदूषण - नियंत्रण, वन्य जीवन संरक्षण, सामुदायिक अधिकार, शहरी समस्याओ यानी लगभग हर क्षेत्र मे अपना दखल बना उसी केंद्रीकरण को तनिक छोटे रुप मे अपने कामकाज मे अपनाता है जिसके लिये वह सरकार की टल्ख आलोचना करता है।

★ इस तरह के संगठन यह पहले हमने शुरु किया. की बीमारी से भी पीड़ित होते हैं। देश विदेश मे जो भी नवाचार कहीं हो रहे हैं उनका श्रेय लेने को वे हमेशा आतुर रहते हैं भले ही फिर उनका योगदान किसी स्वतत्र जन आंदोलन या संगठन के पक्ष मे मात्र एक बयान जारी करने तक ही सीमित क्यो न रहा हो। इसी तर्क के सहारे वे हर अन्य स्वैच्छिक सगठन को अपने प्रतिद्वंदी के रुप में देख अपने इलाके मे घुस आने वाले अतिक्रमण मान लेते हैं। इस तरह के 'बिगो{ संगठनों के अन्य संगठन को अपने प्रतिद्वंदी के रुप मे देख अपने इलाके मे घुस आने वाले अतिक्रामक मान लेते हैं। इस तरह के 'बिगों" सगठनों के अन्य संगठनो के साथ स्वस्थ या दीर्घकालीन रिश्ते क्वचित ही बन पाते हैं और फिर वे 'एकला चालो रे" ही पसंद करने लगते हैं।

★ ये 'बिगों" संगठन प्रतिभाशाली और प्रतिबद्ध लोगों के साथ आकर्षक आर्थिक सौदे पर उन्हें अपने साथ काम करने को लुभाते है और उनके वेतनमान बढते - बढते कार्पोरेट कम्पनियो के मझौल अधिकारियों के समकक्ष हो जाते हैं। कोई आश्चर्य नही कि इसी वजह से इनके स्टाफ मे लोगों का जो आना - जाना अविश्वसनीय रुप से भारी तादाद में होता है वह फुटबाल के सितारा खिलाडियो या पत्रकारो खेद के साथ इनका भी जिक्र करना पड रहा है। के सौदों की याद दिलाता है।

★ ये संगठन राजनीतिक सत्ता के ताम - झामो और तिकडमो की कटु, आलोचना जिस मुस्तैदी से करते हैं उतनी ही आतुरता से वे इनका वरदहस्त पाने के लिये भी दौड पड़ते हैं। यहां तक कि ये लोग ऐसे नेताओं जिन्हे कोई वैधता प्राप्त नही है या राजनैतिक पार्टियो के नेताओ को भी नुमाइशों के उद्‌घाटन, पुस्तकों के विमोचन, वृक्षारोपण तथा वार्षिक व्याख्यान आदि के बहाने आमन्त्रित कर उनकी नजर में चढ़ने की कोशिश करते है।

★ इन्हें चूंकि यह पता है कि सूचना ही ताकत है वे भी आकडो और जानकारियो के मामलो मे सरकार जैसी ही गोपनीयता बरतते हैं। अपने लोगो की तो इन जानकारियां तक कोई पहुंच ही नहीं ही नहीं बन पाती। सरकारी एजेंसियों की घृणित गोपनीयता के इन आलोचकों से जब कोई जानकारी चाही जाती है तो कई मर्तबा किसी साथी स्वैच्छिक संगठन तक को उसे न दिये जा सकने के बेहद मौलिक कारण बड़ी शिष्ट मासूमियत के साथ दे दिये जाते हैं। मसलन, वे कह देते हैं रिपोर्ट अभी छप रही है, यह तो अभी कच्चे मसविदे की शक्ल मे है या कि दानदाता ने यह जानकारी प्राप्त करने का काम हमे सौंपा है, हम उसे उसकी इजाजत के बगैर आपको नही सौंप सकते आदि।

★ ये संगठन आम जनता के प्रति प्रतिबद्ध होने के बजाय अपने आपको अपने दानदाता या सरकार के प्रति ज्यादा जावबदेह मानते हैं।

★ इन संगठनो मे आतरिक प्रजातंत्र और न्याय की स्थिति की कोइ बहुत अच्छी नहीं होती। अक्सर सबसे ऊंचे मुकाम पर बैठा बास बड़े निर्णय के समय अपने कर्मचारियों को विश्वास में नहीं लेता, और न उनसे कोई परामर्श ही करता है। इतना ही नही एक ही संगठन के भीतर आयगत विषमताएं चौंकाने वाली होती है। अभी हाल ही मे कई 'बिगों" उनके द्वारा अपनाई गयी उन श्रम नीतियों के कारण विवाद के घेरे मे आए हैं जो सामाजिक न्याय का उल्लंघन करते हैं।

★ इन्ही संगठनो मे कितने ही सरकारी कार्यरत और सेवा निवृत्त अफसरो को भी नियुक्त करने के उदाहरण नजर आते हैं। प्रणाली से बाहर रह कुछ करने की इच्छा कई अफसरों की यद्यपि वास्तविक होती है तथापि कई अफसर ऐसे भी है जो कि तृणमूल स्तर की गतिविधियों से जुडने के बजाए सरकार के प्रति नरम रवैय्या अख्तियार कर लेते हैं। वे अपने भीतरी प्रभाव का इस्तेमाल करने की कोशिश मे मौजूदा प्रणाली पर अंगुली उठाने मे हिचकिचाते हैं। हमें उस वक्त भी आश्चर्य नहीं होना चाहिए जब किसी दिन वे चोटी के भारतीय अफसरशाहो का आपत्तिजनक विनिमय अतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष तथा विश्व बैंक या बहुराष्ट्रीय कपनियो के उच्चाधिकारियों के साथ करते दिखलाई दे। यह चीज विदेशों मे तो हो भी रही है।

★ कई अनुसंधान या हिमायती किस्म के स्वैच्छिक संगठन यद्यपि अपनी छवि एक जमीनी संस्था जैसी दिखलाना चाहते है और उनके अनुसधान, प्रकाशनो, अभियानों तथा प्रसार माध्यमो को जारी विज्ञप्तियों के माध्यम से व्यापक जनमत निर्माण कर दलित वर्ग के पक्ष मे आवाज उठाने का दम भरते हैं। तथापि वे ऐसे जमीनी आंदोलन खडे करने के पात्र नही होते जो प्रभावित लोगो के लिये सडकों पर संघर्ष करे या प्रजातान्त्रिक तरीकों से उनकी मुश्किलो को दूर करें। इन 'बिगों" संगठनों को स्थानीय मुद्दो पर जन - आंदोलन खडे करते हुए भी. क्वचित ही देखा जाता है। अकेली राजधानी दिल्ली मे कोई ६० पर्यावरण सगठन ऐसे है जो अंतर्राष्ट्रीय या विश्वव्यापी मुद्दों पर तो बहुत बढ - चढ कर बोलते हैं लेकिन उनके पिछवाडे कट रहे पेडों की अनदेखी कर रहे हैं। दिल्ली का जो एक प्रतिष्ठित संगठन आज से ५० वर्ष बाद भारत कैसा हो इसकी तस्वीर पेश करने मे लगा है, उसके साथ उन बहुसंख्य ग्रामीणजनों का कोई जुडाव नही है जिनसे यह देश वास्तव मे बनता है।

★ अपने अनेक क्षेत्रीय कार्यालय तथा शाखाएं खोलकर ये संगठन यथासम्भव अपने प्रभाव क्षेत्र का ज्यादा से ज्यादा विस्तार करने की पूरी कोशिश करते है। इस प्रक्रिया मे वे इस दुविधा के शिकार हो जाते हैं कि इन शाखा प्रशाखाओं को सब कुछ ऊपर से डिक्टेट करते हुए भी उन्हें स्वायत इकाइयों के रुप में कार्यरत कैसे बतलाएं। कुछ समय पूर्व ऐसा ही एक बिगो - संगठन उस समय पशोपश मे पड गया जब उसी की एक शाखा ने नर्मदा घाटी बांधो के समर्थन में एक पुस्तिका प्रकाशित कर दी जबकि उसका मुख्यालय बांध - विरोधी आंदोलन का समर्थन करता है।

★ कहने को तो ये सभी संगठन उर्जा - किफायत, संसाधन - संरक्षण तथा सार्वजनिक परिवहन के पक्षधर है लेकिन वे खुद ठाठदार तथा संसाधनो की बरबादी करने वाले तामझाम अपनाए हुए हैं। दिल्ली के कुछ थोड़े से स्वैच्छिक सगठनों को छोड अधिकांश ने अपने दफ्तरो मे वे एयर कंडीशनर लगवा लिये हैं जो हानिकारक सी एफ सी गैस उत्सर्जित करते हैं। यही फिजूल खर्ची बड़े - बडे दफ्तरों से लेकर उन शानदार सम्मेलनों तक की जाती है जो पांच सितारा माहौल में आयोजित किये जाते हैं जबकि यही कान्फ्रेंसें किसी मामूली हाल या शामियाने के तले भी उतनी ही असरदार हो सकती है। यह सही है कि न तो ये सारे दुर्गुण सभी स्वैच्छिक संगठनों मे है और न ही इससे वे सारे अच्छे काम खारिज हो जाते हैं जो वे कर रहे हैं तथापि ये प्रवृत्तियां काफी चिंताजनक है क्योंकि वे समूचे गैर सरकारी स्वैच्छिक सगठन - क्षेत्र की विश्वसनीयता और प्रभावशीलता को प्रभावित करती है। बड़ा या विराट बनने की धुन पालने वाले ऐसे संगठन उन छोटे तथा उनसे कहीं ज्यादा स्वैच्छिक संगठनों को सारे कोष तथा कार्मिकों काहथिया कर भारी नुकसान पहुचाते हैं। इसकी एक विडंबना यह भी है कि वे अनचाहे ही ऐसे हजारों नकली स्वैच्छिक संगठनों की बाढ को प्रोत्साहित करते हैं जो रातोंरात दौलत और शोहरत पा जाने की उम्मीद मे बड़ी तादाद में उग आते हैं। बड़ी - बड़ी तनख्वाह और सुख सुविधाएं पेश कर वे स्वैच्छिकता की भावना को ही नष्ट कर देते हैं। वे सरकारो तथा निगमों के भ्रष्ट तौर तरीकों का विरोध करने वाली गैर सरकारी संगठनो की छवि को क्षतविक्षत करने के अलावा विश्व बैंक जैसी बदनाम एजेंसियो तथा भ्रष्ट नेताओं के साथ संपर्क बना उस आम जनता को भ्रमित करते हैं जो यह जानना चाहती है कि वह आखिर किसकी आस करे। चूंकि इन संगठनों के नेता प्रख्यात पर्यावरणविद होते हैं, वे हजारों ऊंची उमंग रखने वाले युवाओं के खतरनाक आदर्श बन जाते हैं। वे स्वैच्छिक संगठनो की एक ऐसी छवि बनाते हैं जिससे लगता है कि वे मात्र फुर्सत के क्षणों को बिताने का कोई फैशनेबल तरीका या लाभदायक कारोबार है, जबकि वह वास्तव मे एक गंभीर तथा कमरतोड मेहनत की मांग करने वाला काम है। सबसे खतरनाक बात तो यह है कि वे इस विचार को बढ़ावा देते हैं कि सारे देश मे इस समय बह रही उपभोक्तावाद की लहर में खुद भी बह जाने मे कुछ भी गलत नहीं है।

साम्राज्य तोड़ने वाले :

खुश किस्मती से कम से कम फिलहाल देश के अधिकांश गैर - सरकारी स्वैच्छिक संगठनों तक महत्वाकांक्षा की यह बीमारी नहीं फैल पाई है। देश में हजारो सस्थाएं अब भी ऐसी है जो न्यूनतम सुविधाओं के साथ अपने लक्ष्य की खातिर खट रही है और स्वैच्छिकतावाद शब्द उनके कोष से गायब नहीं हुआ है। कई आंदोलनो के वे कार्यकर्ता जो आसानी से किसी निगमित कपनी मे छः अंकों मे वेतन पा सकते है, गांवो मे तीन अंकों के वेतन पर काम कर रहे हैं। कई शहरी स्वैच्छिक सगठन अब भी स्वयसेवको के रुप में पूर्णकालिक कार्यकर्ता नियुक्त किये हुए हैं और सदा जीवनशैली अपना मामूली घरों में रह रहे हैं । इस प्रकार के सगठन जानबूझ कर बहुत से कामो में एक साथ दखल नहीं देते और न ही बड़ी - बडी कंपनियो से या विदेशी कोषो से दान कबाडने का कोई तरकीबें भी भिड़ाते हैं। ये वे लोग है जो अन्य उपरोक्त ठाठदार संगठनों की फिजूलखर्जी से लज्जित होते हैं। वे लोग अपनी समाज में रह कर अपनी विनम्र आवाज जमीनी आंदोलनों के पक्ष मे उठाते हैं। वे कभी यह दावा भी नहीं करते कि उन्हीं के पास हर समस्या का हल है। इन संगठनों के सदस्य यदि श्रेष्ठी वर्ग के होते भी है तो भी वे उन विषमताओं के खिलाफ आवाज उठाते हैं जो इन वर्गों की ही पाली पोसी हुई हैं। कई लोग अब यह माग करने लगे हैं कि गैर सरकारी संगठनों के कामकाज पर सरकार को सख्ती से नजर रखनी चाहिए। लेकिन यह बात बेहद खतरनाक है क्योंकि उपरोक्त समस्याओं से निपटने के बहाने सरकार समूचे गैर सरकारी सेक्टर के हाथ बांधने की कोशिश कर सकती हैं। इसी वजह से कुछ बरस पूर्व जब प्रतिष्ठित समाजसेवक बंकर राय की कथित प्रेरणा से सरकार ने गैर सरकारी सगठनो के लिये एक आचार संहिता बनाने की पहल की थी तब सभी गैर सरकारी संगठनों ने उसकी कड़ी आलोचना कर उस प्रस्ताव को नाकाम कर दिया था। लेकिन सरकार अपनी तरफ से कोई कारवाई करे, जो कि मौजूदा रुझान को देखते हुए अपरिहार्य लगता है, उसका इतजार करने के बजाय खुद गैर सरकारी स्वयसेवी सेक्टर को आत्म -निरीक्षण तथा स्व मूल्याकन का काम शुरु कर देना चाहिए। अपनी आचार संहिता खुद लागू करने की दिशा में हम जो संभावित कदम खुद उठा सकते हैं वे निम्नानुसार हो सकते हैं -

★ एक साथ हर प्रकार की समस्याओं को हल करने के लिये केंद्रीकृत साम्राज्य स्थापित करने के बजाय हमे विकेंद्रीकृत और स्वतत्र गैर सरकारी संगठन प्रक्रिया की शुरुआत कर उसी के हाथ मजबूत करने चाहिए। समूचे देश में किसी संगठन की शाखाएं फैली हुई हो यह बात सुनने मे तो अच्छी लगती है लेकिन दीर्घकाल में ज्यादा प्रभावशील और टिकाऊ बात तो यही होगी कि ऐसी इकाईयों को खुद स्वतंत्र संगठन बनने के लिये ही प्रोत्साहित किया जाए।

★ निश्चित की कार्यकर्ताओं को इतना काफी पैसा तो मिलना ही चाहिए कि उन्हें सडको पर भटकना न पड़े या हमेशा अगला भोजन कहां से आएगा इसकी चिंता न करनी पडे, लेकिन गैर सरकारी संगठनों को उन छप्पर - फाड वेतनो पर अंकुश लगाना चाहिए जो वे कतिपय प्रतिभाशाली लोगो को वर्तमान में देने को तैयार हो रहे हैं। आखिर हम उसी कार्पोरेट सैक्टर से क्यों होड ले जिसके दर्शन का हम विरोध करते हैं ?

★ हमें यह दर्शा देने की जरुरत है कि हम सीमित संसाधनो और साधारण किफायती कार्यालयीन सुविधाओं के होते भी कार्यकुशल हो सकते हैं। टिकाऊ जीवन शैली को हम चाहे जैसे भी परिभाषित करें, उसे सक्षात जी कर दिखलाने का असर उसके बारे मे उपदेश देने से कहीं बहुत ज्यादा होता है।

★ बेशक, राजनीति की दुनिया पर अपना असर छोडना बल्कि उसमें शामिल होना भी हमारे लिये जरुरी है क्योंकि स्वयसेवी दुनिया यदि ऐसी नहीं करेगी तो, उसका कोई भविष्य ही नही होगा, लेकिन इसका आधार वास्तविक जन - चेतना और मेहनत से कमाई हुई विश्वसनीयता होनी चाहिए न कि ठाठदार ठेठ या फैशनेबल समारोह राजनीतिज्ञो की उपेक्षा तो हमें कतई नही करना चाहिए जिन्हे जनता की सेवा के लिये चुना गया है, उस पर राज करने के लिये नही।

★ हमम यह समझ लेने की विनम्रता होनी चाहिए कि हम लोग एक व्यापक तर तथा कहीं जटिल तस्वीर का एक छोटा सा हिस्सा मात्र है तथा जिस बात की हम हिमायत कर रहे है वह हमसे पहले की कोई अन्य व्यक्ति या संगठन द्वारा भी कही गई हो सकती है। हमारी मुख्य भूमिका तो यही है कि हम उन दलित - दमित पिछड़े लोगों के संघर्ष को अपने समर्थन द्वारा आसान बनाए जो अपनी जिंदगियों पर अपना थोडा बहुत नियंत्रण कायम करने की कोशिश कर रह हैं।

★ और अंत में हमे अपने राजसी अहंकार को थोडा कम करना होगा ताकि हम एक दूसरे को अपने प्रतिद्वंदियो के बजाय सहयोगी साथियों की तरह देखें और तिरस्कार के स्थान पर उनका सम्मान कर सके। सूचना को बांट एक दूसरे के प्रयासों से पूरक बन, एक दूसरे की भूमिकाओं को मान्यताओं दे तथा एक खुले वातावरण में अपने संजाल बना हम आज की तरह छिन्न - भिन्न टुकड़ों के स्थान पर एक चमत्कारी ताकत बन सकते हैं।

क्या यह सब पर पाना असंभव है ? शायद नहीं गैर सरकारी संगठन परिपूर्ण तो नहीं होते लेकिन यदि हम इन परिवर्तनों की आकांक्षा नहीं करते या कुछ हद तक उन्हे हासिल नही कर पाते हैं तो बेहतर होगा हम सरकारी क्षेत्र में आमूल चूल परिवर्तन लाने की अपनी पाखंडपूर्ण मांग का त्याग कर दें। वर्ना राजनीतिज्ञो और अफसरशाहों जैसे सत्ता के मुकामो पर पहुचने के बावजूद यही सब कबाडा करेंगे जो वे आज कर रहे हैं। और भविष्य मे कभी कोई विकेंद्रित तथा समुदाय आधारित समाज रुप लेता भी है तो उसमें हम उतने ही अप्रासंगिक होंगे जितने कि राजनीतिक आका है। दोनों ही तरह से थोडी से विनम्रता से हमें फायदा ही होगा। सप्रेस